ग़ायब होने के विरुद्ध

सुरेंद्र जोशी को मैं उनके युवा संघर्षशील दिनों से जानता हूँ जब वे एक सार्थक और प्रतिबद्ध नज़रिए से कला दुनिया की अपनी शर्तों को पहचान रहे थे।जीवन की सच्चाई को वे एक कार्बन यथार्थ में जानना और जाँचना चाहते थे,काव्यात्मक अर्थ में भी और एक वास्तविक अर्थ में भी।फ़ोटोकॉपी का यथार्थ शायद ज़्यादा साफ़ और चमकदार है पर एक समय तरह -तरह के कार्बन यथार्थ. काग़ज़ों के कई रंगों को कला की चुनौती के रूप में देखनेवाले युवा कलाकार को एक दूसरे यथार्थ की खोज करनी थी।भले ही लम्बे समय से सुरेंद्र राजस्थान के सिनेमाई उजाड़ में रह रहे हैं पर पहाड़ के जीवन का प्रारंभिक संघर्ष,वहाँ का एक दूसरा सच उनकी कला का वास्तविक स्रोत है।बर्फ़ का उजाड़ तो और भी विचलित कर सकता है एक संघर्षशील और संवेदनशील युवक को।

सुरेंद्र का प्रारम्भिक जीवन विपदा से लड़ कर उसे अनुकूल बनाने की लड़ाई भी है।और अब उत्तराखंड में इसी मानसिकता के महीन टेक्स्चर को सुरेंद्र म्यूज़ीयम कल्चर के दायरे में रह कर भी उसके परे चले जाने की जटिल प्रक्रिया में खोज रहे हैं।कितने आधुनिक कलाकार ऐसे होंगे जो लाउड्स्पीकर ले कर लॉटरी बेचने का काम भी जगह जगह पर भटक कर कर चुके हैं।

सुरेंद्र की शुरुआती कला में ठेले के पहिए का रूपाकार और उसका टेक्स्चर केंद्र में था।लखनऊ शहर की एक व्यस्त सड़क में एक दुर्घटना में ठेलेवाले के लिए जान बची तो लाखों पाये वाली बात महत्वपूर्ण नहीं थी।उसकी नज़र अपने ठेले के टूटे हुए चक्के पर थी।
१९६५ की लड़ाई में सूबेदार पिता के घायल होने की व्यथा,उनका असमय चले जाना सुरेंद्र की शुरुआती लड़ाई थी।वे एक बातचीत में बरसों पहले मार्मिक ढंग से पिता के संस्मरण की बात कर चुके हैं जब पिता बच्चों से कहते थे मेरे सर के सफ़ेद बाल निकालो तो दस बालों के दस पैसे मिलेंगे।सुरेंद्र से पिता ने जब यह

कहना शुरू कर दिया,तुम बैल का स्केच बनाओ तो तुम्हें दस पैसे प्रति स्केच मिलेंगे,तो यह कलाकार का पहला जन्म था।पर दुर्भाग्यवश कलाकार के लिए यह पुरस्कार या सहारा थोड़े ही समय का था।

सुरेंद्र के अमूर्त रंग-रूपाकारों और कल्पनाशील इन्स्टलेशन में अद्भुत परिपक्वता है पर उसका वास्तविक आधार और टेक्स्चर टूटे हुए ठेले के पहिए की रफ़-टफ सच्चाई है।मुझे सुरेंद्र की फ़ुटपाथ प्रदर्शनियों के उस प्रारंभिक दौर की याद आ रही है जब बड़े बड़े कैन्वस ले कर वे पहुँचे तो तेज़ बारिश ने उनके रंगों को बहा दिया।एक नए टेक्स्चर ने जन्म लिया।फ़ैज़ की पंक्तियाँ,जो बांग्लादेश के अलग हो जाने पर लिखी गयी थीं,संदर्भ दूसरा था पर वे मुझे याद आ गयीं -ख़ून के धब्बे धुलेंगे कितनी बरसातों के बाद।रंग बह गए,बदरंग हो गए पर कलाकार ने हार नहीं मान ली।हार नहीं मानूँगा यह सुरेंद्र के जीवन और कला की पहली पहचान है।पहाड़ के जीवन में भूकम्प जैसी विपदाएँ सुरेंद्र को बल भी देती हैं,जीवन की समझ भी।सुरेंद्र जैसे एक अजीब से संग्रहालय में बरसों से भटक रहे हैं ,इस संग्रहालय की दीवारें भी हैं और यह बिना दीवारों का भी अनोखा संग्रहालय है।जीवन से जूझने,लड़ने ,उसे बदलने की भी पूरी कोशिश है।

कई साल पहले सुरेंद्र के जीवन और कला की पड़ताल करते हुए मैंने उनकी कला के मशीनी होने के विरुद्ध होने ,उसकी गरिमा और स्वतंत्रता की रक्षा पर फ़ोकस होने की बात पर ज़ोर दिया था।यह बात आज भी महत्वपूर्ण है।सुरेंद्र की कला का एक अद्भुत ताना-बाना है,उसमें तकनीकी कौशल भी है,कल्पना की उड़ान भी,एक दिव्य क़िस्म का टेक्स्चर भी।उनकी कला में नीले,काले,भूरे,धूसर कार्बन काग़ज़ों का नॉस्टैल्जिया भी है,उसकी ग़ायब होती सच्चाई भी है।
डेविड हॉकनी जैसे ७५ साल पर कर चुके कलाकार आज ज़्यादा प्रासंगिक हैं जो डिजिटल माध्यम में महारत के बावजूद रेखांकन को कला की मज़बूत बुनियाद मानते हैं।वे आज वापस लैंडस्केप विधा को महत्वपूर्ण मानते हैं,और उसे नया जन्म,नयी पहचान दे रहे हैं।मुझे लगता है,सुरेंद्र वापस उत्तराखंड के लैंडस्केप को

एक नयी पहचान दे सकते हैं।उनके भीतर अनगिनत स्मृतियाँ होंगी,एक ग़ायब होती दुनिया को बचाने की सार्थक कोशिश उन्हें एक नयी कला का रास्ता देगी।
विनोद-भारद्वाज
कवि और कला समीक्षक